Shikshan Sanshodhan : Journal of Arts, Humanities and Social Sciences ISSN(o): 2581-6241
Monthly, Peer-Reviewed, Refereed, Indexed Journal Impact Factor: 7.384
Volume - 7, Issue - 07, July - 2024

DOIs:10.2018/SS/202407007 --:-- Research Paper / Article / Review

बौद्धसिद्धों की सिद्धि: एक विवेचन

[1] सीमा, [2] डॉक्टर आशीष पाण्डेय,
[1] पी.एच्.डी. शोधच्छात्रा, हिन्दी और आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, मानविकी संकाय, वनस्थली विद्यापीठ, वनस्थली

[2] शोध-निर्देशक: असिस्टैंट प्रोफेसर, हिन्दी और आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, मानविकी संकाय, वनस्थली विद्यापीठ, वनस्थली

Email – mairam.sanskrit@mkuniversity.ac.in

शोध सार: प्रस्तुत शोधपत्र इस विचार के विश्लेषण और विवेचन को प्रस्तुत करता है कि बौद्ध-सिद्धों को सिद्ध कहे जाने के पीछे उनकी कौन-सी सिद्धियाँ कारण रही हैं। हिन्दी के साहित्य के आदिकाल में हुए बौद्ध-सिद्धों को प्रायः सभी ने सिद्ध ही लिखा है। कुछ विद्वानों ने इन्हें अपनी सिद्धियों की धौंस देने वाला भी कहा है। ऐसे लोग उन्हें अणिमा, लघिमा आदि सिद्धियों का स्वामी मानते हैं। यानी ऋद्धि और सिद्धि दोनों का स्वामी। लेकिन, यह आश्चर्यजनक है कि बौद्ध-सिद्धों ने ऋद्धि और सिद्धि, दोनों को ही खारिज किया है। आचार्य अभयदत्तश्री ने भी उनको ऋद्धि-सिद्धि का स्वामी मानने के बावजूद, उनका लक्ष्य महामुद्रा को ही बताया है। साथ ही, उन्होंने इस महामुद्रा का जो अर्थ बताया है, वह भी किसी चामत्कारिक सिद्धि की तरफ संकेत नहीं करता है। स्वयम् बौद्ध-सिद्धों ने भी जिन सिद्धियों की बात की है, वे भी चामत्कारिक न होकर, गहन आध्यात्मिक अनुभूति से सम्बन्धित ही हैं। उन्होंने स्वसंवेदन की सिद्धि, जगत् की सहज सिद्धि, सहज यानी बुद्धरूप की सिद्धि और अचिन्तयोग की सिद्धियों का उल्लेख किया है। यहाँ उनका संक्षिप्त परिचय भी दिया जाएगा।

बीज शब्द : बौद्ध-सिद्ध, बौद्ध-सिद्धों की सिद्धियाँ, दोहाकोशों में सिद्धियाँ।

1. INTRODUCTION:

सामान्यतः बौद्ध-सिद्धों को सभी ने सिद्ध ही कहा है, चाहे वे उनके विरुद्ध लिखने वाले विद्वान् रहे हों, या फिर उनके समर्थन में लिखने वाले रहे हों। लेकिन, सवाल उठता है कि किस तरह की सिद्धि या सिद्धियों को प्राप्त कर लेने से उन्हें सिद्ध कहा गया है। क्या उन्होंने उन सब सिद्धियों को प्राप्त कर लिया था, जिनका उल्लेख *चतुरशीतिसिद्धप्रवृत्तिः* नामक ग्रन्थ में उपलब्ध होता है, यानी अणिमा, लघिमा आदि? अगर ऐसा नहीं था, तो उन्होंने किस कारण सिद्ध कहा गया है? अनेक ग्रन्थों में उन्हें सिद्धियों यानी चामत्कारिक शक्तियों का दिखावा करने वालों के रूप में लिखा गया है, जिन ग्रन्थों में खुद *चतुरशीतिसिद्धप्रवृत्तिः* भी शामिल है। लेकिन, यहाँ यह जानना रोचक होगा कि भले ही *चतुरशीतिसिद्धप्रवृत्तिः* ने भी इन्हें लोक-प्रसिद्ध सिद्धियों से सम्पन्न बताया है, लेकिन, उसमें भी बौद्ध-सिद्धों का लक्ष्य महामुद्रा को ही बताया गया है।

2. DISCUSSION: अब इस विषय पर विस्तारपूर्वक विचार किया जा रहा है।

1) **महामुद्रा रूपी सिद्धि:** आचार्य अभयदत्तश्री के द्वारा प्रणीत ***चौरासी सिद्धों का वृत्तान्त*** यानी ***चतुरशीतिसिद्धप्रवृत्तिः*** में सभी सिद्धों के बारे में कुछ कहानियों का संकलन है। इन कहानियों में से ज्यादातर में बौद्ध-सिद्धों की सिद्धि के रूप में महामुद्रा का ही उल्लेख मिलता है। (1) लीलापा – "राजा ने उन्हें उसमें भी निश्चित रूप से स्थित हो जाने की बात कही, तो गुरु ने उन्हें उत्पत्ति और निष्पन्न के युगनद्ध (सहज रूप से) भावनाओं का अभ्यास करवाया और तदनुसार सहज रूप से उनमें ज्ञान (प्रकाश) उदित होने लगा और उन्हें महामुद्रा (परम) सिद्धि प्राप्त हुई। (दोर्जे 1998:4-5)" (2) शबरपा – "शबरपा बारह वर्षों तक महाकरुणा की भावना और साधना करते रहे, जिसके फलस्वरूप उन्हें परम सिद्धि की प्राप्ति हुई। जब उन्हें महामुद्रा परम सिद्धि का लाभ हो गया, तो वह एक दिन महाकरुणा की धर्मता (समाधि) से व्युत्थित होकर (उठकर) आर्य अवलोकितेश्वर के चरणों में गये। (दोर्जे 1998:19)" (3) सरहपा – "उन्होंने निमित्त और विकल्पना को (सदा के लिए) परित्याग कर, प्राकृतिक स्वभावगत अर्थ का अनुष्ठान (निदिध्यासन) किया; फलतः उन्हें महामुद्रा – परम सिद्धि का लाभ हुआ। (दोर्जे 1998:24)" (4) गोरक्षपा – "गोपालक अपने गुरु के उपदेश के अनुसार साधना (भावना) करता रहा। फलतः उसे महामुद्रा परम सिद्धि का लाभ हुआ। (दोर्जे 1998:33)" (5) वीणापा – "उन्होंने वैसा ही किया, तो नौ वर्ष के बाद उनके चित्त का मल विशुद्ध होकर दीपक के समान प्रभास्वरता का उन्हें अनुभव होने लगा और महामुद्रा परम सिद्धि की प्राप्ति हुई। (दोर्जे 1998:37)" (6) कोदालिपा –"उस समय तक कोदालिपा ने निर्विकल्पक भावना द्वारा उस बारह वर्ष की अवधि में महामुद्रा नामक परम सिद्धि प्राप्त कर ली और और वे सहज समाधि में स्थित हो गए। (दोर्जे 1998:40), कुदालिपा ने उत्तर दिया मेरे साक्षात् गुरु आपके उपदेश के अनुसार साधनानुष्ठान करने से मुझे महामुद्रा धर्मकाय की प्राप्ति हुई है। (दोर्जे 1998:41)" (7) शान्तिपा – "गुरु (शान्तिपा) ने भी पुनः बारह वर्षों तक उपदेशों का अनुशरण कर साधना अनुष्ठान किए। तदुपरान्त रत्नाकर शान्ति को भी महामुद्रा परम सिद्धि का लाभ हुआ और अनेक प्रकार से जगत् का कल्याण करने के बाद वह भी खेचर भूमि के लिए रवाना हो गए।(दोर्जे 1998:41)" (8) चमरिपा – "गुरु के उपदेश रूपी जूता पहना और सभी अविद्या भूमि पर व्याप्त होकर (हावी होकर) बारह वर्ष तक उन्होंने साधना की। फलतः उनके चित्त अविद्या आदि मलों से विशुद्ध होकर उन्हें महामुद्रा परमसिद्धि की प्राप्ति हो गई। (दोर्जे 1998:47)" (9) श्यालिपा – "इस प्रकार उनमें स्वतः भय से मुक्त अभय महासुख की अनुभूति उत्पन्न होने लगी और इसी ज्ञान की नौ वर्ष तक भावना करते रहे। उनके काय और चित्त के सभी मल विशुद्ध होकर उन्हें महामुद्रा परम सिद्धि की प्राप्ति हो गई। (दोर्जे 1998:72)" (10) तिल्लिपा – "दस वर्ष में उनके सभी मल विशुद्ध होकर महामुद्रा परम सिद्धि का लाभ हुआ। (दोर्जे 1998:73)" (11) चत्रपा – "छह वर्षों के बाद उन्हें महामुद्रा परम सिद्धि का लाभ हुआ। (दोर्जे 1998:75)" (12) भद्रपा – "छह वर्ष की अवधि में उसे महामुद्रा परमसिद्धि का लाभ हो गया। (दोर्जे 1998:78)" (13) धुखन्धि – "बारह वर्षों तक साधना करने पर उसे महमुद्रा परमसिद्धि की प्राप्ति हो गई। (दोर्जे 1998:79)" (14) अजोगी – "नौ वर्षों तक इसी की भावना करने पर उन्हें महामुद्रा परमसिद्धि प्राप्त हुई। (दोर्जे 1998:81)" (15) धोबीपा – "इस प्रकार उन्होंने काय मुद्रा वाक् जप और चित्त – उत्पत्ति और सम्पन्न क्रम की अविरल भावना की। फलस्वरूप उन्हें महामुद्रा

परमसिद्धि प्राप्त हो गई। (दोर्जे 1998:85)" (16) भन्धेपा – "तदनुसार उन्होंने करुणा दृष्टि (दर्शन), मुदिता भावना, मैत्रीचर्या और उपेक्षा के फल के रूप में भावना की। फलतः विपरीत भ्रान्तियों का सारा विष (सभी मल) विशुद्ध हो गया और उन्हें महामुद्रा परम सिद्धि का लाभ हो गया। (दोर्जे 1998:96)" (17) तन्तिपा – "इस प्रकार जैसे निर्देश दिया, वैसे ही उसने भावना की। फलतः त्रिधातुक विकल्प धर्मता में लीन हो गये। इस तरह के ज्ञान से निःस्वभावता में लीन होकर उसे महामुद्रा परमसिद्धि प्राप्त हुई। (दोर्जे 1998:98)" (18) कुचिपा – "उस व्यक्ति को इसका सम्यक् अवबोध हो गया। कुचिपा को निरालम्बन महामुद्रा परम सिद्धि का लाभ हो गया। (दोर्जे 1998:102)" (19) धर्मपा – "इस (उक्ति) का अर्थ अवबोध होकर, उस व्यक्ति को समस्त श्रुतधर्मों और अनेक चित्तवृत्तियों की नाना समरसता का ज्ञान हो गया। फलतः उन्हें महामुद्रा परमसिद्धि का लाभ हुआ और उनका नाम धर्मपा प्रसिद्ध हो गया। (दोर्जे 1998:103)" (20) अचिन्तपा – "शिष्य ने इसका अभिप्राय समझ लिया और उसे महामुद्रा (परमसिद्धि) का लाभ हुआ। (दोर्जे 1998:103)" (21) नलिनपा – "नौ वर्ष के बाद (उस भाव्य) अर्थ का अवबोध होकर सभी प्रकार के भ्रान्ति मलों से उनका चित्त विशुद्ध हो गया। फलतः महामुद्रा परमसिद्धि का उन्हें लाभ हो गया। (दोर्जे 1998:110)" (22) भुसुकुपा – "श्रद्धालुओं को धर्मारूढ करने के बाद भुसुकु ने एक ही रात की साधना से महामुद्रा परमसिद्धि का लाभ किया। (दोर्जे 1998:116)" (23) जालन्धरपा – "इस प्रकार सम्पन्न का उपदेश दिया, तो उन्होंने भी तदनुसार भावना (घोर साधना) की। उन्होंने सात वर्ष में महामुद्रा परमसिद्धि का लाभ किया। (दोर्जे 1998:127)" (24) राहुल – "शरीर (आनन्द) प्रफुल्ल होकर सोलह वर्ष की अवस्था में परिणत हो गया तथा महामुद्रा परमसिद्धि का उनको लाभ हुआ। (दोर्जे 1998:129)" (25) मेधिनीपा – "उसने इस (वचन) के अनुसार भावना की। बारह वर्ष में सांसारिक नाना विकल्प अवरुद्ध हो गये, महामुद्रा परमसिद्धि का उन्हें लाभ हो गया। (दोर्जे 1998:134)" (26) जोकिपा/जोगीपा – "बारह वर्ष में (चित्तादि) मल विशुद्ध होकर महामुद्रा परमसिद्धि का उन्हें लाभ हो गया। (दोर्जे 1998:144)" (27) चलुकपा/चलुकिपा – "नौ वर्ष में उनका समस्त चित्त मल विशुद्ध होकर और उन्हें महामुद्रा परमसिद्धि का लाभ हुआ। (दोर्जे 1998:145)" (28) गोधुरीपा – "नौ वर्ष में उनके चित्त का सभी मल (आवरण) और महामुद्रा परमसिद्धि और परम सिद्धि प्राप्त हो गई। (दोर्जे 1998:148)" (29) नगुणपा – "अन्त में जैसे समुद्र में नाव छूट जाती है, उसी प्रकार उसका भ्रान्ति-जाल विच्छिन्न हो गया। उन्होंने महामुद्रा परमसिद्धि प्राप्त की और उसी शरीर के द्वारा खेचरभूमि चले गए। (दोर्जे 1998:151)" (30) मेखलापा – "वे कण्हपा की सेवा करती और महामुद्रा परमसिद्धि का लाभ कर अनेक वर्षों तक जगतार्थ करती हुई अवदान उक्तियाँ कहकर खेचर भूमि को चली गई। (दोर्जे 1998:169)" (31) कन्तलिपा – "परिणामस्वरूप उन्हें **सर्वधर्मशून्यता और जीवमात्र के प्रति करुणा इन दोनों की युगल स्थिति – महामुद्रा** परमसिद्धि की प्राप्ति हुई। (दोर्जे 1998:174)"

(1) **एक लक्ष्य के रूप में महामुद्रा** – यहाँ यह बात सर्वत्र दिखती है कि महामुद्रा परमसिद्धि को सिद्धों की साधना का एक लक्ष्य ही स्वीकार किया गया है। इसका अर्थ यह है कि जितने भी विद्वानों ने महामुद्रा को स्त्री कहा है, उन सब ने यहाँ भूल कर दी है। अगर बौद्ध-सिद्ध साधना में शामिल होने वाली स्त्रियों को ही महामुद्रा कह रहे

होते, तो उनका वर्णन एक लक्ष्य की तरह नहीं होता, क्योंकि जो साथ ही है, वह लक्ष्य नहीं हो सकती। लक्ष्य तो उसी को कहा जा सकता है, जो अप्राप्त हो।

(2) **महामुद्रा का सही अर्थ** – साथ ही यहाँ सिद्ध कन्तलिपा की कहानी में यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि उस महामुद्रा का अर्थ क्या है। इसके अनुसार **महामुद्रा का अर्थ** है – **सर्वधर्मशून्यता और जीवमात्र के प्रति करुणा इन दोनों की युगल स्थिति**। यह उल्लेख उस प्रचार को भी खारिज कर देता है, जिसके अनुसार करुणा का अर्थ पुरुष और प्रज्ञा का अर्थ स्त्री होता है। यह अर्थ तन्त्र में रहा भी हो, तो भी यह सिद्धों के यहाँ स्वीकार्य नहीं रहा है।

2) **स्वसंवेदन रूपी सिद्धि:** बौद्ध-सिद्धों ने जिस सिद्धि का स्वयम् उल्लेख किया है, वह है – स्वसंवेदन रूपी सिद्धि। इसमें ध्यान का महासुख होता है। यह बौद्ध-सिद्धों के चिन्तन का केन्द्रीय विषय है, इसी कारण, सभी प्रमुख सिद्धों ने इसका उल्लेख किया है। इस अवस्था में, साधक के मन में, इन्द्रियों के विषयों के प्रति आकर्षण नहीं रहता। यहाँ, इच्छित मनोकामना पूरी होती है यानी परममहासुख की प्राप्ति होती है, क्योंकि सुख को पाने के साधनों की इच्छा भी सुख रूपी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए ही रहती है और जब सुख ही प्राप्त हो गया, तो उसको पाने के साधनों को प्राप्त करने की इच्छा स्वतः ही खत्म हो जाती है। इसकी कुछ झलक देने के लिए, यहाँ सरहपा के दो वचनों और तिलोपा के एक वचन को पेश किया जा रहा है।

इन्दी विसअउ असंट्ठाउ, सएं सम्वित्तिए जत्था।

णिअ चित्तन्ते काल गउ, झाण महासुह तत्थ।। *सरहपा दोहाकोश* रा. 40.

(जहाँ स्वसंवित्ति यानी अपने अस्तित्व का गहन बोध यानी अपने सिर्फ विद्यमान होने के प्रति जागरूकता होती है, वहाँ इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों में संस्थित नहीं होती, अपना चित्तन्त यानी विचारशक्ति कालगत हो जाती है और ध्यान का महासुख वहाँ होता है।)

अइसें सो पर होइ ण अइसों। जिम चिन्तामणि कज्ज सरीसों।

अक्कट पण्डिअ भन्तिअ णासिअ। सअसम्वित्ति महासुह वासिअ।। *सरहपा दोहाकोश* बागची 76।।

(जो इस तरह का होता है, वह पराया नहीं होता है। यह चिन्तित इच्छाओं को पूरा करने वाली मणि की तरह काम करता है। अचम्भा, कि शास्त्रीय पुस्तकों के पाठी भ्रान्ति के कारण नष्ट हो जाते हैं। महासुख तो स्वसंवित्ति में ही वास करता है।)

सअसंवेअण तत्तफल तीलपाअ भणन्ति।

जो मण गोअर पइट्ठइ सो परमत्थ ण होन्ति ।।9।।

(तिलोपा स्वसंवेदन यानी अपने-आप के बारे में जागरूकता और तत्त्व के फल यानी परिणाम को कहते यानी बताते हैं। जो मन यानी विचार के लिए गोचर यानी प्राप्य है, वह परमार्थसत्य नहीं होता है।)

3) **ऋद्धि-सिद्धि का त्याग व जगत् की सिद्धि:** महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने बौद्ध-सिद्धों के बारे में लिखा है कि लोग बोधिसत्त्व-प्रतिमाओं तथा दूसरे देवताओं की भाँति इन सिद्धों को अद्भुत चमत्कारों और दिव्य शक्तियों के धनी

समझते थे। ... यह लोग त्राटक या हिप्नोटिज्म की कुछ प्रक्रियाओं से वाकिफ थे। इसी के बल पर अपने भोले-भाले अनुयायियों को कभी-कभी कोई चमत्कार दिखा देते थे, कभी-कभी हाथ की सफाई तथा श्लेषयुक्त अस्पष्ट वाक्यों से जनता पर अपनी धाक जमाते थे।

लेकिन, तथ्य यह है कि महापण्डित राहुल सांकृत्यायन के लेख के ठीक विपरीत, बौद्ध-सिद्ध **ऋद्धियों और सिद्धियों को प्राप्त करने के योग्य नहीं समझते थे**। वे तो ऋद्धि और सिद्धि, दोनों को ही निरर्थक मानते थे। उनकी नजर में तो, ऋद्धि, सिद्धि, पाप, पुण्य आदि लौकिक चीजें हैं। यो अनुत्तर नहीं हैं। उनके अनुसार, जगत् की सच्ची सिद्धि तो इन तमाम उलझाने वाली चीजों को पीछे छोड़कर अनुत्तर का बोध प्राप्त करने पर होती है। इस विषय में सरहपा लिखते हैं।

रिद्धि-सिद्धि हले वेण्णि न काज्ज। पाप-पुण्ण तहि पाडहु वाज्ज।।

सो अणुत्तर वुज्झहि जव्वे। सरह भणइ जग सिज्झइ तव्वे।। ***सरहपा दोहाकोश*** **रा. 83.**

(अरी, ऋद्धि और सिद्धि, दोनों का ही कोई काम नहीं है, पाप और पुण्य को वर्जित कर दो। गुरु सरहपा कहते हैं कि जब उस अनुत्तर का बोध हो जाता है, तभी जगत् की सिद्धि होती है।)

4) **सहज यानी बुद्धरूप की सिद्धि:** बौद्ध-सिद्धों का विचार है कि अगर वास्तव में इस लोकधातु में कोई बुद्धरूप होता है, तो उसकी सिद्धि यानी प्राप्ति भी सहज स्वभाव के सिद्ध होने पर ही होती है। इस बारे में सरहपा लिखते हैं।

एवहिं बुद्ध-रुअ हले कोवि।

सहज सहावें सिज्झइ सोवि।। ***सरहपा दोहाकोश*** **रा. 107.**

(अरी, इस तरह अगर कोई बुद्धरूप भी होता है, तो वह भी सहज स्वभाव में ही सिद्ध होता है।)

एवहिं वुद्ध-रुअहु लड सिज्झइ। पज्जोपाए कहवि ण वज्झइ।

जइ मण सहज णिरन्तरे पावइ। इन्दी विसअहि खणवि ण धावइ।। ***सरहपा दोहाकोश*** **रा. 108.**

(इस तरह से लाड यानी प्यार से बुद्ध के रूप की सिद्धि होती है। प्रज्ञोपाय में कथमपि बन्धता नहीं है। अगर मन लगातार सहज को पाता है, तो इन्द्रियाँ विषयों की तरफ क्षण यानी पलभर के लिए भी नहीं दौड़ेंगी।)

इस जगह, बौद्ध-सिद्ध उन मूर्तियों की पूजा को अस्वीकार कर रहे हैं, जो तान्त्रिक साधना में अनिवार्य होती हैं। उन्होंने सहज-जीवन को ही बुद्धरूप कहा है। यह बात तो धम्मचक्कपवत्तनसुत्तं से एकदम मेल खाती है, क्योंकि वहाँ तथागत ने जो पहली बात कही है, वह यही है कि तथागत ने दो अतिवादों से अलग मार्ग, मज्झिमा पटिपदा यानी मध्यम अर्थात् सन्तुलन का मार्ग खोज लिया है। बौद्ध-सिद्ध भी अतिवादों से रहित इस सहज-जीवन को ही बुद्धरूप कह रहे हैं।

5) **अचिन्तयोग की सिद्धि:** अचिन्तयोग यानी चिन्तन अर्थात् विचारों के प्रवाह से रहित होकर सिर्फ वर्त्तमान में ही खो जाने की सिद्धि। इसके बारे में सरहपा लिखते हैं।

सहजे सहज वि वाहिअ/वोहिअ जवे।

अचिन्त जोएं सिज्झइ तव्वें।। *सरहपा दोहाकोश* रा. 117.

(सहज में जब सहज का बोध होता है, तभी अचिन्तयोग की सिद्धि होती है।)

णिजिअ सासो णिहन्द-लोअणो।

सअल विआर विमुक्को मणो।। *सरहपा दोहाकोश* रा. 131.

(सांस जीत लिया जाता है और लोचन यानी आँखें पलक झपकने से रहित हो जाती हैं और मन सारे विचारों से विशेष रूप से मुक्त हो जाता है।)

सवाल उठता है कि बौद्ध-सिद्धों ने अचिन्तयोग को एक लक्ष्य की तरह क्यों माना है। बात यह है कि सिद्ध जानते थे कि हर व्यक्ति के मन में अनेक विचारों का प्रवाह चलता ही रहता है। इन सभी विचारों में से आधे तो भूतकाल के अच्छे या बुरे अनुभवों से सम्बन्धित होते हैं और बाकी आधे भविष्यत्काल की योजनाओं और सम्भावनाओं से सम्बन्धित होते हैं। भूतकाल के सुखद अनुभवों को याद करके व्यक्ति उनसे सुख पाना चाहता है और भूतकाल के दुःखद अनुभवों के बारे में विचार करके या तो उन दुःखद अनुभवों के कारणों को जानना चाहता है, या फिर उनसे दुःखी होकर अपने-आप को या फिर जिनको वह उन अनुभवों का कारण मानता है, उन व्यक्तियों और परिस्थितियों को कोसता है। इसी तरह, भविष्यत्काल के लिए योजनाएं बनाता है, तो भविष्य में सुख पाने के लिए और सम्भावनाओं पर विचार करता है, तो तब भी उनसे फायदा उठाकर सुखी होने के लिए ही वह ऐसा करता है। यानी हर हाल में, सुख ही लक्ष्य रहता है। लेकिन, भूतकाल तो बीत चुका है और भविष्य के सुख तक पहुँच पाना भी निश्चित नहीं है। व्यक्ति सिर्फ अपने जीवन के वर्त्तमान को ही उपयोग कर सकता है। किन्तु, व्यक्ति बहुत ही कम समय अपने वर्त्तमान जीवन से जुड़ पाते हैं और पूरी जिन्दगी इसी तरह बीत जाती है। इसलिए, बौद्ध-सिद्ध व्यक्ति को विचारों पर आधारित भूत और भविष्य के जाल से निकाल कर जीवन की वर्त्तमान अवस्था में आनन्द पाने के योग्य बनाना चाहते हैं।

3. CONCLUSION / SUMMARY: बौद्ध-सिद्धों को जिस महामुद्रा की सिद्धि के कारण सिद्ध कहा जाता है, आचार्य अभयदत्तश्री के ग्रन्थ *चतुरशीतिसिद्धप्रवृत्तिः* के अनुसार, उसका अर्थ है – सर्वधर्मशून्यता और जीवमात्र के प्रति करुणा इन दोनों की युगल स्थिति। इसका मतलब है कि यह सिद्धि चमत्कारों से सम्बन्धित सिद्धि नहीं है, बल्कि यह तो गहन आध्यात्मिक अनुभूति से सम्बन्धित है। ठीक इसी तरह, जिन सिद्धियों का उल्लेख स्वयम् बौद्ध-सिद्धों ने अपने वचनों में किया है, वे भी किसी भी दृष्टि से चामत्कारिक सिद्धियाँ न होकर, सिर्फ गहन आध्यात्मिक अनुभूतियों से ही सम्बन्धित हैं। सरहपा तथाकथित ऋद्धियों और सिद्धियों को तो लौकिक चीज मानते हैं और उनको सर्वथा त्याग देने का उपदेश देते हैं। वे सहज-जीवन को ही बुद्धरूप यानी बुद्ध के धर्मकाय की सच्ची सिद्धि मानते हैं। इसी तरह, वे स्वसंवेदन और अचिन्तयोग की सिद्धि को ही सर्वोच्च महत्त्व देते हैं, क्योंकि ये दोनों व्यक्ति को जीवन के वर्त्तमान प्रवाह से जोड़कर महासुख की तरफ अग्रसर कर देते हैं।

सन्दर्भग्रन्थसूची:

1. चतुर्वेदी, परशुराम. *बौद्ध साहित्य की सांस्कृतिक झलक*. इलाहाबाद: साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड,1958.
2. दोर्जे, सेम्पा (अनु.). *आचार्य अभयदत्तश्री प्रणीत चौरासी सिद्धों का वृत्तान्त*. वाराणसी: केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, 1998.
3. सांकृत्यायन, महापण्डित राहुल (सम्पा. अनुवा.). *दोहाकोश [हिन्दी-छायानुवाद-सहित]*. पटना: बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, 1957.
4. Jackson, Roger R. *Tantric Treasures: The Collections of Mystical Verse from Buddhist India*. New York: Oxford University Press, 2004.